.... **यहाँ एक और भी गुप्त अर्थ है, वह इस प्रकार है — लोक में प्रातिहार्य पद का अर्थ आभूषण प्रसिद्ध है।** आभूषण। **भगवान के भी अशोकवृक्ष आदि आठ प्रातिहार्य या आभूषण होते हैं।** आठ प्रातिहार्य होते हैं न उन्हें? अशोकवृक्ष आदि दिव्यध्वनि। **यहाँ कवि प्रातिहार्य पद के श्लेष से पहले यह बतलाना चाहते हैं कि संसार के अन्य देवों की तरह आपके शरीर पर प्रातिहार्य नहीं हैं।** शोभा नहीं है। **इन्द्र के प्रातिहार्य अर्थात् प्रतिहारीपना हो, पर आपके प्रातिहार्य या आभूषण कहाँ से आये?** आपकी आभूषण की शोभा आपको कहाँ से आयी? वह तो इन्द्र की शोभा है। **फिर उपचारपक्ष का आश्रय लेकर कहते हैं कि आपके भी प्रातिहार्य हो सकते हैं। उसका कारण है 'तत्कर्मयोगात्' अर्थात् आभूषणों के कार्य सौन्दर्यवृद्धि के साथ आपका सम्बन्ध होना है।** इसलिए आपको भी वह शोभा देता है।

निश्चय से लें तो चैतन्य भगवान आत्मा की निर्मल निर्विकल्प पर्याय में जो शोभा है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की। चैतन्य वस्तु एक समय में पूर्ण आनन्द और ध्रुव शुद्ध है, उसकी अन्तर्दृष्टि करने से जो पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शोभा है, वह तो पर्याय की शोभा है। द्रव्य को कहते हैं, तुम्हारी शोभा उसमें नहीं। नवनीतभाई! समझ में आया इसमें? प्रभु! आत्मा सच्चिदानन्द निर्मल अनन्त गुण का धाम है, वह तुम्हारी किसकी शोभा? वह तो पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के कल्पवृक्ष की भाँति फलित हुए, वह तो पर्याय की शोभा है। तुम कहाँ से उसका लाभ ले गये कि हमारे कारण यह है? एक ओर ऐसा कहकर फिर बदलते हैं।

हे भगवान! चैतन्य, तेरे कारण वह शोभा हुई है। चैतन्य निर्मलानन्द द्रव्यस्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र करने से वह पर्याय प्रगट हुई, वह द्रव्य के कारण प्रगट हुई। इसलिए द्रव्य की ही शोभा है, वह पर्याय की वास्तव में शोभा नहीं। सेठी!

मुमुक्षु : दोनों में से कौन सी सच्ची?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों सच्ची।

निर्मल पर्याय आत्मा में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र ऐसी शोभा वह पर्याय में उसका वेदन, अनुभव उसका है। समझ में आया? कहा नहीं वहाँ? (प्रवचनसार) १७२ गाथा में कहा न? आत्मा पर्याय को स्पर्श करता है, आत्मा द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। १७२ गाथा, अलिंगग्रहण में। प्रवचनसार, १७२ गाथा। सेठी! जरा सूक्ष्म पड़ेगा। आत्मद्रव्य के अनुभव की दशा में वह आत्मा पर्याय का वेदन, शुद्ध चैतन्यधातु का अनुभव करने से आत्मा के पर्याय का अनुभव होता है। इसलिए आत्मा अनुभव की पर्याय को वेदता है। आत्मा द्रव्य को स्पर्शता नहीं। अड़ता नहीं, समझते हो? छूता नहीं। छूता नहीं कहते हैं न? छूता नहीं, अड़ता नहीं—हमारी काठियावाड़ी भाषा है। अड़ना अर्थात् छूना, स्पर्शना। आत्मद्रव्य वर्तमान पर्याय का अनुभव करता है परन्तु आत्मा द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, अनुभव में स्पर्श नहीं करता। समझ में आया? इसलिए उस द्रव्य के अनुभव को ही आत्मा कहा जाता है। परन्तु उस अनुभव की शोभा, हे भगवान! वह तेरे द्रव्य के कारण है। अन्तर की धातु चैतन्य ज्ञानानन्द प्रभु, उसकी अन्तर्दृष्टि करने से वह अनुभवपर्याय प्रगट हुई, इसलिए वास्तव में शोभा अनुभव की कहते हैं। परन्तु उस अनुभव की शोभा द्रव्य के कारण है। देवीलालजी!

यह तो भगवान आत्मा के गीत हैं। विषापहार। मिथ्या भ्रमणा और राग-द्वेष का नाश। चैतन्य भगवान दिव्यशक्तिवान, यह उसकी अन्तर्दृष्टि और उसके सत्कार माहात्म्य में गया, जहर का नाश और अमृत की प्रगट दशा। आत्मा में-पर्याय में अमृत की रेलमछेल, उसकी शोभा है। तेरी शोभा तो अनुभव तो उसका ही है न? परन्तु वास्तव में तो उस अनुभव की शोभा वह द्रव्य के कारण प्रगट हुई है। ऐसा कहकर.... समझ में आया? यह २० हुई।

काव्य २१

श्रिया परं पश्यति साधु निःस्वः,
श्रीमान्न कश्चित्कृपणं त्वदन्यः।
यथा प्रकाशस्थितमन्धकारस्थायी
क्षतेऽसौ न यथा तमःस्थम्॥

धनिकों को तो सभी निधन, लखते हैं, भला समझते हैं।
पर निधनों को तुम सिवाय जिन, कोई भला न कहते हैं॥
जैसे अन्धकारवासी, उजियाले वाले को देखें।
वैसे उजियाला वाला नर, नहिं तमवासी को देखे॥

अन्वयार्थ — (निःस्वः) निर्धन पुरुष (श्रिया परम्) लक्ष्मी से श्रेष्ठ अर्थात् सम्पन्न मनुष्य को (साधु) अच्छी तरह आदरभाव से (पश्यति) देखता है किन्तु (त्वदन्यः) आपके अलावा (कश्चित्) कोई (श्रीमान्) सम्पत्तिशाली पुरुष (कृपणम्) निर्धन को (साधु न पश्यति) अच्छे भावों से नहीं देखता। ठीक है, (अन्धकारस्थायी) अन्धकार में ठहरा हुआ मनुष्य (प्रकाश-स्थितम्) उजाले में ठहरे हुए पुरुष को (यथा) जिस प्रकार (ईक्षते) देख लेता है; (तथा) उसी प्रकार (असौ) उजाले में स्थित पुरुष (तमःस्थम्) अँधेरे में स्थित पुरुष को (न ईक्षते) नहीं देख पाता।

भावार्थ — हे प्रभो! संसार के श्रीमान, निर्धन पुरुषों को बुरी दृष्टि या निगाह से देखते हैं, पर आप श्रीमान होते हुए भी ज्ञानादि सम्पत्ति से रहित मनुष्यों को बुरी निगाह से नहीं देखते, बल्कि उन्हें भी अपनाकर हित का उपदेश देकर सुखी करते हैं; अतः इस तरह आप संसार के अन्य श्रीमन्तों से भिन्न ही श्रीमान हैं। इस तरह दोनों की श्रीलक्ष्मी में भेद है। उनके पास रुपया, पैसा, चाँदी, सोना वगैरह जड़ लक्ष्मी है; पर आपके पास अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यरूप अनन्त चतुष्टयमय लक्ष्मी है।

काव्य - २१ पर प्रवचन

इक्कीसवीं गाथा (काव्य)।

श्रिया परं पश्यति साधु निःस्वः,
श्रीमान्न कश्चित्कृपणं त्वदन्यः।
यथा प्रकाशस्थितमन्धकारस्थायी
क्षतेऽसौ न यथा तमःस्थम्॥

धनिकों को तो सभी निधन, लखते हैं, भला समझते हैं।
पर निधनों को तुम सिवाय जिन, कोई भला न कहते हैं॥
जैसे अन्धकारवासी, उजियाले वाले को देखें।
वैसे उजियाला वाला नर, नहिं तमवासी को देखे॥

दृष्टान्त दिया है, दृष्टान्त। हे भगवान! हे परमात्मा! इस प्रकार पूर्णानन्द को लक्ष्य में लेकर, हे सर्वज्ञप्रभु! ऐसे अपने सर्वज्ञस्वभाव को दृष्टि में लेकर और सर्वज्ञ भगवान की स्तुति करते हैं। हे महाराज! हे नाथ! **निर्धन पुरुष लक्ष्मी से श्रेष्ठ अर्थात् सम्पन्न मनुष्य को अच्छी तरह आदरभाव से देखता है....** क्या कहते हैं? लक्ष्मीरहित पुरुष— निर्धन (पुरुष) लक्ष्मीवान को भले प्रकार आदर से देखता है। **किन्तु आपके अलावा कोई सम्पत्तिशाली पुरुष...** आपसे भिन्न अज्ञान की सम्पत्ति, यह धूल की, लक्ष्मी, इज्जत-कीर्ति की सम्पत्तिवाले **निर्धन को अच्छे भावों से नहीं देखता।** वे निर्धन को अच्छे भाव से नहीं देखते। क्या कहा, समझ में आया इसमें?

निर्धन पुरुष....यह संसार की बात ली है। वे सधन को दूसरी दृष्टि से देखते हैं कि यह मुझसे बड़े और यह अच्छे। इस प्रकार अच्छी दृष्टि से (देखते हैं)। परन्तु सधन पुरुष निर्धन को गरीबरूप से गिनकर किसी गिनती में नहीं लेते। समझ में आया? **कोई सम्पत्तिशाली पुरुष....** गरीब को **अच्छे भावों से नहीं देखता। ठीक है, अन्धकार में ठहरा हुआ मनुष्य उजाले में ठहरे हुए पुरुष को जिस प्रकार देख लेता है;....** यह तो दृष्टान्त लौकिक का दिया। अन्धकार में अर्थात् जो बाहर की सम्पदारहित वे बाहर की

सम्पदावाले को देख लेते हैं। **उसी प्रकार उजाले में स्थित पुरुष अँधेरे में स्थित पुरुष को नहीं देख पाता।** परन्तु सम्पत्तिशाली पुरुष निर्धन को नहीं देखता। सम्पत्तिशाली पुरुष। वह अन्धकार और उजाले का दृष्टान्त।

परन्तु आप तो हे श्रीमान्! उससे आपमें अलग विलक्षणता है। आप तो श्रीमान्— स्वरूपलक्ष्मी अनन्त ज्ञानादि होने पर भी, निर्धन जो अज्ञानी प्राणी उसके हितकर के लिये आपकी दिव्यध्वनि का उपदेश आता है। आपकी बात ही दूसरे श्रीमानों से निराली है। सेठी! समझ में आया इसमें? एक (भजन) आता है न? उसमें यह आता है, देवचन्दजी में एक आता है।

प्रभु तुम जाणग रीति, सहू जग देखता हो लाल....
निज सत्ता से शुद्ध सहू को पेखता हो लाल....

'प्रभु तुम जाणग रीति....' हे सर्वज्ञ परमात्मा! आपकी ज्ञान की कोई रीति ऐसी है कि 'सहू जग देखता हो लाल, निज सत्ता से शुद्ध सहू को पेखता हो लाल....' हे परमात्मा! जगत के प्राणी आत्मा निज सत्ता से शुद्ध सच्चिदानन्द मूर्ति है, ऐसा आप देख रहे हो। सधन लक्ष्मीवाले अनन्त ज्ञानी परमात्मा उस निर्धन की सम्पत्ति को अन्दर में देख रहे हैं। पर्याय में नहीं परन्तु उसका स्वरूप सम्पदा से भरपूर है, ऐसा भगवान देख रहे हैं। प्रभु! जगत के श्रीमान् से आपकी श्रीमान् की लक्ष्मी कोई अलग प्रकार की है। वे श्रीमान् निर्धन को गिनती में नहीं गिनते।

गिनती में निर्धन श्रीमान् को गिनता है लौकिक में। परन्तु आप तो श्रीमान्! अनन्त ज्ञान, दर्शन और आनन्द के धनी, वह अश्रीमान् जो अज्ञानी पामर पर्याय में है, उसे भी आप गिनती में गिनते हो कि प्रभु! वह भी परमात्मस्वभाव है। सेठी! 'सर्व जीव है सिद्धसम'। वह भी परमात्मस्वरूप है। भूल एक पर्याय में है, वस्तु में नहीं। ऐसा आप सर्वज्ञपद में श्रीमान् अनन्त ज्ञान के धनी, ऐसे निर्धन को भी आप इस प्रकार देखते हो। और लक्ष्मीवाले निर्धन की गिनती नहीं करते। प्रभु! आपका श्रीमान्पना लौकिक के श्रीमानपने से कोई अलग प्रकार का है। यह अन्तर करते हैं। वे लक्ष्मीवाले लिखते हैं न तुम्हारे? श्रीमान्। नहीं आता? पत्र में लिखते हैं या नहीं? धूल के लक्ष्मीवाले हों,

उन्हें लिखते हैं या नहीं? श्रीमान्। नवनीतभाई! कहते हैं, वह ऊपर से बात करते हैं।

हे प्रभु! जगत के श्रीमान्, वे तो जगत के श्रीमान् न हों उन्हें हल्की दृष्टि से देखते हैं, हों! परन्तु आपकी कोई रीति ही निराली लगती है। आपका स्वरूप अनन्त ज्ञान और दर्शन और आनन्द से भरपूर द्रव्य में था, वह पर्याय में आपने प्रगट किया, ऐसा हमें विश्वास हुआ है। हमें ऐसा विश्वास हुआ है। वह विश्वास सम्यग्दर्शन है, उससे हम ऐसा मानते हैं कि आप पूर्ण होने पर भी सभी प्राणियों को अन्तर सत्ता से शुद्ध की लक्ष्मी से आप देख रहे हैं। आप दूसरे को नहीं गिनते और गिनती बाहर कर डालते हो—ऐसा है नहीं। सेठी! यह अपनी सत्ता के माहात्म्य में गीत गाते हैं। हमारी सत्ता चैतन्यप्रभु अनन्त आनन्द और शान्ति से भरपूर है। वह हमारी नजरों से देखते हैं। इसी प्रकार भगवान! तुम भी दूसरे प्राणी को नजर से इस प्रकार देखते हो।

भावार्थ :- हे प्रभो! संसार के श्रीमान, निर्धन पुरुषों को बुरी दृष्टि या निगाह से.... बुरी अर्थात् गिनती में लेते नहीं। भावार्थ है न? **पर आप श्रीमान होते हुए भी ज्ञानादि सम्पत्ति से रहित मनुष्यों को बुरी निगाह से नहीं देखते,....** बुरी निगाह से नहीं देखते हैं, वे तो भगवान हैं। वे प्रभु हैं, प्रभु हैं। वह पर्याय में भूला है परन्तु वस्तु में भूल नहीं। वस्तु में नहीं, गुण में नहीं, शक्ति—स्वभाव में कहीं भूल की गन्ध नहीं। समझ में आया? देखो! यह चैतन्य के गीत गाते हैं, हों! यह। इस प्रकार अपने को ऐसा मानते हैं कि अहो! हमारा द्रव्यस्वभाव और गुणस्वभाव तीन काल-तीन लोक में भूलरहित है। उसमें भूल है नहीं। वह पर्याय में भूल है। प्रभु! उसे हम नहीं देखते। हम तो निर्भूल चैतन्य है, उसे देखते हैं। समझ में आया? हम सदोषता को नहीं देखते। वर्तमान की सदोषदशा अल्प है, उसे हम नहीं देखते। हम तो निर्दोष सच्चिदानन्द निधान आत्मा, प्रभु! उसकी नजर से हम तो पवित्रता को ही देखते हैं। समझ में आया? देखो! यह चैतन्य की भक्ति और यह भगवान की भक्ति।

उन्हें भी अपनाकर हित का उपदेश देकर सुखी करते हैं;.... अज्ञानी मनुष्य को अपना जानकर अर्थात् उसे उपदेश देते हैं। **इस तरह आप संसार के अन्य श्रीमन्तों से भिन्न ही श्रीमान हैं। इस तरह दोनों की श्रीलक्ष्मी में भेद है।** दोनों की श्रीलक्ष्मी में भेद

जो ठहरा। **उनके पास रुपया, पैसा, चाँदी, सोना....** हीरा और माणेक जड़-जड़। **पर आपके पास अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यरूप अनन्त चतुष्टयमय....** स्वरूप मुझमें ऐसा पड़ा है अनन्त चतुष्टयस्वरूप। मैंने मात्र प्रतीति और ज्ञान द्वारा उसे जाना है। आपने तो स्थिरता द्वारा उसे प्रगट करके अनन्त चतुष्टय पर्याय में प्रगट किये हैं। कहो, समझ में आया? यह साधन क्या? और कहाँ से प्रगटे? और सब इकट्ठा आता है। यह विकल्प और राग को प्रभु! उसकी कोई कीमत नहीं। उसकी कोई कीमत नहीं। कीमत तो द्रव्यस्वभाव की है। जिसका मूल्यांकन, मूल्यांकन करना, वह ज्ञान की पर्याय में भी दुर्लभ हो गया, ऐसा है। ऐसे ज्ञान की पर्याय चैतन्यमूर्ति भगवान को परखकर जो प्रगट दशा प्रगट होती है, प्रभु! उसकी मूल की कीमत अचिन्त्य है तो तेरे मूल की कीमत का क्या कहना? पूर्ण स्वभाव की कीमत तो कोई पर्याय द्वारा तो पूरी पड़ सके, ऐसा नहीं है।

कहा है न निर्मल? उसमें कहा नहीं? नियमसार नहीं? चार भाव से अगम्य आत्मा है। ले! क्या कहा यह? नियमसार! पद्मप्रभमलधारिदेव! महापरमागम के जाननेवाले भावलिंगी सन्त। एक बार ऐसा कहा कि अरे...! उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक जो चार पर्याय है, उसे तू प्रभु गम्य नहीं, हों! अर्थात्? उसके आश्रय से तू प्रगट हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया इसमें कुछ? क्षायिकभाव को गम्य नहीं। ओहोहो! वे तो कहते हैं कि इस टीका में भूल की है। सुन न अब। गम्य नहीं अर्थात् उसका अचिन्त्य माहात्म्य जो है, वह चार भाव प्रगट हुए और क्षायिक समकित प्रगट हुआ, स्वभाव की प्रतीति लेने से प्रगट हुआ, उसके आश्रय से नयी निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती। इसलिए कहते हैं, चार भाव के आश्रय से तू गम्य नहीं है। तू तो तू, तेरे गम्य है। समझ में आया? यह परमपारिणामिक चैतन्य कारणप्रभु के यह गीत हैं।

काव्य २२

स्ववृद्धिनिःश्वास-निमेषभाजि,
प्रत्यक्षमात्मानुभवेऽपि मूढः।
किं चाखिलज्ञेयविवर्तिबोध-
स्वरूपमध्यक्षमवैति लोकः॥

निज शरीर की वृद्धि, श्वास-उच्छ्वास और पलकें झपना।
ये प्रत्यक्ष चिह्न हैं जिसमें, इतना भी अनुभव अपना॥
कर न सकें जो तुच्छबुद्धि वे, हे जिनवर! क्या तेरा रूप।
इन्द्रियगोचर कर सकते हैं, सकल ज्ञेयमय ज्ञानस्वरूप?॥

अन्वयार्थ — (प्रत्यक्षम्) यह प्रकट है कि (यः) जो मनुष्य (स्ववृद्धिनिःश्वास-निमेषभाजि) अपनी वृद्धि, श्वासोच्छ्वास और आँखों की टिमकार को प्राप्त (आत्मानुभवे अपि) अपनी आत्मा के अनुभव करने में भी (मूढ़ः) मूर्ख है, (स लोकः) वह मनुष्य, (अखिलज्ञेयविवर्त्तिबोधस्वरूपम्) सम्पूर्ण पदार्थों की सम्पूर्ण पर्यायों को जाननेवाला (अध्यक्षम्) सकल प्रत्यक्ष केवलज्ञान को अर्थात् हे प्रभु! आपको (किं च अवैति) कैसे जान सकता है?

भावार्थ - भगवन्! जो मनुष्य अपने आपको स्थूल चिह्नों से भी जानने में समर्थ नहीं है, वह ज्ञानस्वरूप तथा आत्मा में विराजमान आपको कैसे जान सकता है? अर्थात् नहीं जान सकता।

काव्य - २२ पर प्रवचन

बाईस।

स्ववृद्धिनिःश्वास-निमेषभाजि,
प्रत्यक्षमात्मानुभवेऽपि मूढः।
किं चाखिलज्ञेयविवर्तिबोध-
स्वरूपमध्यक्षमवैति लोकः॥

हिन्दी।

निज शरीर की वृद्धि, श्वास-उच्छ्वास और पलकें झपना।
ये प्रत्यक्ष चिह्न हैं जिसमें, ऐसा भी अनुभव अपना॥
कर न सकें जो तुच्छबुद्धि वे, हे जिनवर! क्या तेरा रूप।
इन्द्रियगोचर कर सकते हैं, सकल ज्ञेयमय ज्ञानस्वरूप?॥

अन्वयार्थ — यह प्रकट है कि जो मनुष्य अपनी.... शरीर की वृद्धि। वह शरीर में समय-समय में वृद्धि होती है, उसे अज्ञानी देख नहीं सकता। क्या कहते हैं? यह नजदीक की सम्पदा जो इस शरीर की, उसकी वृद्धि को भी वह देख नहीं सकता। समझ में आया इसमें? शरीर बढ़ता है समय-समय में, मिनिट में, खबर है उसे? जो मनुष्य अपनी वृद्धि—इस शरीर की बात है, हों! **श्वासोच्छ्वास....** यह श्वासोच्छ्वास भी दिखाई नहीं देता, कहते हैं। समीप में रही हुई श्वास की क्रिया भी ज्ञात नहीं होती और **आँखों की टिमकार को प्राप्त....** आँखें ऐसे-ऐसे होती है, उसे आँख देख नहीं सकती। ऐसे-ऐसे हो वह नजदीक के अवयवों की क्रिया भी जो देख नहीं सकता.... समझ में आया?

अपनी आत्मा के अनुभव करने में भी मूर्ख है,.... यह पर्याय जो बाहर की है, नजदीक की है, कायम चलती है श्वास और आँख (की टिमकार), उसे भी वह मूर्ख देख नहीं सकता। **वह मनुष्य, सम्पूर्ण पदार्थों की सम्पूर्ण पर्यायों को जाननेवाला सकल प्रत्यक्ष केवलज्ञान को अर्थात् हे प्रभु! आपको कैसे जान सकता है?** समझ में आया? अहो! तेरी अचिन्त्य महिमा! कहते हैं कि उसका भी जिसे ज्ञान नहीं और ऐसा कहे कि यह आत्मा ऐसा है और आत्मा ऐसा है। शरीर के समीप की श्वास की क्रिया वृद्धिगत हुई कि वर्ष में कितने ऊँचे गये? कब से? कितने, खबर है? आपने को तो कुछ खबर नहीं पड़ती। कुछ ऊँचे दूसरे करते हैं कि पर के करने से तुम दो अंगुल ऊँचे हुए। सेठी! शरीर की ऊँचाई, श्वास की क्रिया और आँख के टिमकार—तीनों लिये पूरे। ऐसी अवस्था को भी नहीं देखनेवाले वे मूर्ख लोग आत्मा को किस प्रकार जाने? कहते हैं। समझ में आया?

इसी प्रकार वर्तमान विकल्प और पुण्य-पाप के राग, उसकी क्या चीज़ और

कैसा प्रकार है ? उसे जानते नहीं, उसके बन्ध के भाव को जानते नहीं। उसे अबन्धस्वभावी भगवान आत्मा प्रभु! वह किस दृष्टि से उसका ज्ञान करेगा ? समझ में आया ? यह बाहर में शरीर का लिया, अन्दर में विकल्प है, वह कार्मणशरीर है। शुभ-अशुभभाव होते हैं। उन्हें भी यह बन्धरूप से है, ऐसा नहीं जानता, उसका ज्ञान जिसे नहीं, उसे बन्धरहित भगवान चैतन्य अबन्ध परिणामी स्वभाव, हे भगवान! उसे वह नहीं देख सकता। उसका ज्ञान वह नहीं कर सकेगा। तेरी कोई लीला अचिन्त्य निराली है। समझ में आया ? यह अलग प्रकार की स्तुति धनंजय की है। धनंजय है न ?

भावार्थ :- भगवन्! जो मनुष्य अपने आपको स्थूल चिह्नों से भी जानने में समर्थ नहीं है,.... इस शरीर की पर्याय और रागादि की दशा, विकार आदि की दशा, उसका जिसे सच्चा ज्ञान नहीं, उसकी भी जिसे सच्ची पहिचान नहीं, **वह ज्ञानस्वरूप तथा आत्मा में विराजमान आपको कैसे जान सकता है?** ओ भगवान! समझ में आया ? अकेला चिदानन्द निर्विकल्प प्रभु! उसमें इसकी दृष्टि कहाँ जाए ? अभी इतना भी इसे जँचता नहीं कि यह राग पुण्य का कारण, बन्ध का कारण मलिन है, विकार है, विभाव है, यह सड़ा हुआ अंग है। नवनीतभाई! उसे भी जो कोई ज्ञान में नहीं लेता, यह कहते हैं कि मुझे आत्मा ख्याल में और अनुभव में आया है। मूढ़ लगता है। तुझे चैतन्य की पहिचान है नहीं। **अर्थात् नहीं जान सकता।** कहो, समझ में आया ?

अथवा बाहर से लो अन्तर में तो पर्याय का ज्ञान भी जिसे वास्तविक नहीं, उसे द्रव्य का ज्ञान यथार्थरूप से नहीं हो सकता। एक समय की व्यक्त पर्याय, एक समय की व्यक्त अर्थात् प्रगट पर्याय, वह भी कैसी ? और स्वतन्त्र कैसे है ? उसकी जिसे खबर नहीं, उसे अव्यक्त भगवान पूरा आत्मा जो पर्याय में प्रगट नहीं, एक समय के अनन्त गुण की पर्याय और विकार कैसे स्वतन्त्र और किस प्रकार से है, उसकी भी जिसे खबर नहीं, भगवान! प्रगट की खबर नहीं, उसे अप्रगट की श्रद्धा कहाँ से हो ? समझ में आया ? क्या कहा इसमें ? नेमिदासभाई! क्या कहा परन्तु यह ?

कहते हैं, प्रगट पर्याय प्रगट होती है विकारी या उघाड़ जितना ज्ञानादि का उघाड़, दर्शन का, वीर्य का। उसकी भी जिसे स्वतन्त्रता के सत् की पहिचान, श्रद्धा

नहीं.... समझ में आया ? उसे पूरा भगवान आत्मा स्वयंसिद्ध अकृत्रिम अखण्डानन्द प्रभु ऐसे द्रव्य के स्वभाव की श्रद्धा की कीमत उसे किसी प्रकार नहीं होती। समझ में आया ? इसलिए हे प्रभु! तेरी अन्तर की लीला, उसका माहात्म्य कोई अलौकिक है! ऐसा कहकर भगवान के गीत अर्थात् आत्मा के गीत यहाँ गाते हैं, हों!

विषापहार—अनादि का जहर चढ़ा है, वह अमृतकुण्ड को अवलोकन करने से, भगवान अमृत का कुण्ड-सरोवर, उसे अवलोकन करने से उसके विकार का नाश होता है, निर्विकारी दशा प्रगट हो, उसका क्या माहात्म्य कहें ? उसके पूर्णानन्द के स्वभाव की क्या बात करना ? विकल्पातीत—चिन्तवन में न आवे, ऐसा तेरा स्वभाव है।

काव्य २३

तस्यात्मजस्तस्य पितेति देव
त्वां येऽवगायन्ति कुलं प्रकाश्य।
तेऽद्यापि नन्वाश्मनमित्यवश्यं
पाणौ कृतं हेम पुनस्त्यजन्ति॥

'उनके पिता', 'पुत्र हैं उनके', कर प्रकाश यों कुल की बात।
नाथ! आपकी गुण-गाथा जो, गाते हैं रट-रट दिनरात॥
चारु चित्तहर चामीकर को, सचमुच ही वे बिना विचार।
उपल-शकल से उपजा कहकर, अपने कर से देते डार॥

अन्वयार्थ — (देव) हे नाथ! (ये) जो मनुष्य, आप (तस्य आत्मजः) उनके पुत्र हो और (तस्य पिता) उनके पिता हो (इति) — इस प्रकार (कुलम् प्रकाश्य) कुल का वर्णन कर (त्वाम् अवगायन्ति) आपका अपमान करते हैं, (ते) वे (अद्य अपि) अब भी (पाणौ कृतम्) हाथ में आये हुए (हेम) सुवर्ण को (आश्मनम्) पत्थर है या पत्थर से पैदा हुआ है, (इति) इस हेतु से (पुनः) फिर (अवश्यं त्यजन्ति) अवश्य ही छोड़ देते हैं ?

भावार्थ — एक तो सुवर्ण हाथ नहीं लगता, यदि किसी तरह हाथ लग भी जावे तो उसे यह सोचकर कि इसकी उत्पत्ति पत्थरों से हुई है, फिर फेंक देना मूर्खता है। इसी तरह आपका श्रद्धान व ज्ञान सबको नहीं होता। यदि किसी को हो भी जावे तो वह आपको मनुष्यकुल में पैदा बतलाकर पुनः छोड़ देता है, यह सबसे बढ़कर मूर्खता है। सुवर्ण यदि शुद्ध है, चाहे वह पत्थर से नहीं, दुनिया के और किसी हल्के पदार्थ से उत्पन्न हुआ हो तो भी बाजार में उसकी कीमत पूरी ही लगेगी और यदि वह मैलसहित है, अशुद्ध है तो किसी अच्छे पदार्थ से उत्पन्न होने पर भी उसकी पूरी कीमत नहीं लग सकती।

इस प्रकार जो आत्मा शुद्ध है, कर्ममल से रहित है; भले ही उस पर्याय में नीचकुल में पैदा हुआ हो, वह पूज्य कहलाता है और यदि वही आत्मा उच्चकुल में पैदा होकर भी अशुद्ध है, मलिन है तो भी उसे कोई पूछता भी नहीं है।

काव्य - २३ पर प्रवचन

तेईस।

तस्यात्मजस्तस्य पितेति देव
त्वां येऽवगायन्ति कुलं प्रकाश्य।
तेऽद्यापि नन्वाश्मनमित्यवश्यं
पाणौ कृतं हेम पुनस्त्यजन्ति॥

'उनके पिता', 'पुत्र हैं उनके', कर प्रकाश यों कुल की बात।
नाथ! आपकी गुण-गाथा जो, गाते हैं रट-रट दिनरात॥
चारु चित्तहर चामीकर को, सचमुच ही वे बिना विचार।
उपल-शकल से उपजा कहकर, अपने कर से देते डार॥

हे भगवान! हे आदिश्वरनाथ! और धर्म की आदि का करनेवाला द्रव्य स्वयं चैतन्यनाथ! धर्म की आदि करनेवाला भगवान आत्मा ध्रुव है। इस प्रकार आदिनाथ भगवान इस चौबीसी के आदिनाथ हैं। **हे नाथ! जो मनुष्य, आप उनके पुत्र हो....** आपकी

पहिचान नाभिराजा के पुत्र। ऐसी पहिचान करके पहिचान करावे। प्रभु! यह बात सत्य नहीं है। समझ में आया? महात्मा धर्मात्मा केवलज्ञानी परमात्मा! उन्हें इनके पुत्र, अरे! पुत्र तो शरीर की अपेक्षा से है। आत्मा में कहाँ था? उन्हें—भगवान को उनके परिवार से पहिचान कराना, वह भूल करता है। सेठी! यह पढ़ा है या नहीं? परन्तु तुम तो कहते थे कि पाँच स्तोत्र करते थे प्रतिदिन। परन्तु तुम प्रतिदिन करते थे, ऐसा कोई कहता था। पाँच स्तोत्र प्रतिदिन (करे), इसलिए दूसरी स्वाध्याय नहीं होती। उसी और उसी में सवेरे से शाम समय मिले थोड़ा, उसमें जाता है।

हे नाथ! उनके पुत्र हो और भरत चक्रवर्ती के पिता हो। नाभिराजा के पुत्र और भरत के पिता। प्रभु! **इस प्रकार कुल का वर्णन कर आपका अपमान करते हैं,....** समझ में आया? आप कुलस्वरूप नहीं हैं। उस कुल से आप उपजे नहीं। आपकी शुद्ध परिणति द्रव्य से उत्पन्न हुई है। आपकी शुद्ध परिणति अनन्त ज्ञान, आनन्द आदि, वह द्रव्य से उत्पन्न हुई है, वह द्रव्य उसका मूल कुल है और तुम उन्हें शरीर द्वारा पहिचानना, कुटुम्ब द्वारा पहिचानना कि अमुक के पुत्र और अमुक के पिता और अमुक का पति और उसका भाई, हें! बेटा और मित्र। नहीं, नहीं। अरे! उसे आत्मा सर्वज्ञ परमात्मा की पहिचान की पद्धति नहीं आयी, हों! कहते हैं। उसकी रीति नहीं आयी। फिर.... में घटित करेंगे।

वे अब भी हाथ में आये हुए सुवर्ण को.... आया हाथ में सोना परन्तु **पत्थर से पैदा हुआ है,....** अरे! सोना है न, पत्थर की खान में से पैदा हुआ, छोड़ उसे। पत्थर की खान में से सोना आया, ऐसा करके सोने को छोड़ देता है, वह बड़ा मूर्ख है। इसी प्रकार आपको कुल द्वारा पहिचान करावे—बाप-बेटा द्वारा, परन्तु चैतन्यधातु अनन्त आनन्द का कन्द, उसकी निर्मलानन्द पर्याय द्रव्य से प्रगट हुई—कुल, उसका कुल वहाँ है, वहाँ से वह पर्याय प्रगटी है। आप किसी की प्रजा नहीं, आप किसी के पिता नहीं। समझ में आया? क्या सेठी! बाबूभाई तो तुम्हें बहुत कहते हैं। पिताजी साहेब को प्रार्थना की थी कि वहाँ पधारो, ऐसा कहते थे। पिताजी-बिताजी नहीं, ऐसा कहते हैं। अरे! यह गजब बात! हें!

मुमुक्षु : भगवान की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा की बात है। दूसरी बात अभी बाद में लेते हैं। इस प्रकार जो कोई अज्ञानी यह शरीर की क्रिया और विकल्प की क्रिया से आत्मा को पहिचान कराता है, वह बड़ा मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिस प्रकार वह भगवान की कुल से पहिचान करावे, वह भूले हुए हैं। वे भगवान किसी के कुल में उपजे नहीं और किसी के कुल के पिता हैं नहीं।

अचिन्त्य प्रभु आत्मा! अनादि-अनन्त स्वयंसिद्ध प्रभु, उसकी निर्मल पर्याय भी आत्मा के अन्दर से प्रगट हुई है। उसके कुल की खान तो आत्मद्रव्य है। उसे ऐसा कहना कि भगवान को यह कुल था और भगवान के यह पिता थे, बहुत भूले हैं। भूल में पड़े हैं, कहते हैं। समझ में आया? इसी प्रकार शरीर की स्तुति द्वारा आत्मा की स्तुति करना.... समझ में आया? लो, आया है न समयसार में? नहीं, नहीं। प्रभु! तुझे पीला कहना और रंग से कहना और श्वेत कहना और यह कहना, दिव्यध्वनि के दातार कहना, यह सब शरीर की स्तुति द्वारा, भगवान, आपकी स्तुति मानते हैं, वे महा भूल में पड़े हैं। समझ में आया? आपकी स्तुति तो आपके गुण की परिणति की भक्ति से होती है। बाकी किसी प्रकार स्तुति नहीं होती। सेठी! गजब बात, भाई!

एक तो सुवर्ण हाथ नहीं लगता,.... अब जरा इसका भावार्थ करते हैं। **यदि किसी तरह हाथ लग भी जावे तो उसे यह सोचकर कि इसकी उत्पत्ति पत्थरों से हुई है,....** पत्थर की खान में से सोना उत्पन्न हुआ, **फिर फेंक देना मूर्खता है।** फेंक डालता है। अरे! यह तो पत्थर से उत्पन्न हुआ है। **इसी तरह आपका श्रद्धान व ज्ञान सबको नहीं होता।** आपके श्रद्धान-ज्ञान क्या है, इसकी खबर नहीं। **यदि किसी को हो भी जावे तो वह आपको मनुष्यकुल में पैदा बतलाकर पुनः छोड़ देता है,....** क्या कहते हैं? कि सर्वज्ञपद मनुष्यभव में? भाई! ऐसा कहते हैं न? मनुष्य में तो अल्पज्ञ ही हो सकता है। एक सर्वज्ञ परमात्मा ईश्वर है, वह सर्वज्ञ हो। मनुष्य? मनुष्य? मनुष्यभव में सर्वज्ञ नहीं होते, अल्पज्ञ ही होते हैं। ऐसे लेख आये थे। अखबार में जैन नाम के लेख में भी आये थे। वेदान्त की बात करता हूँ। देखो सर्वज्ञ। .... कहो, समझ में आया? क्या कहा?

मनुष्य अल्पज्ञ ही रह सकता है। इस प्रकार मनुष्य की कीमत से आत्मा की कीमत की, वह मूर्ख है, कहते हैं। आत्मा मनुष्य ही नहीं। आत्मा देव नहीं, आत्मा बादर, पर्याप्त, सूक्ष्म कुछ है नहीं। वह विकल्पातीत और विकल्प और शरीर की परीक्षा से उसे अल्पज्ञ मानना और उसे उनसे अधिक हो सकेगा, ऐसा उसका भान अज्ञानी मूर्ख करता है। मनुष्य है, इसलिए सर्वज्ञ नहीं हो सकता, ऐसा नहीं हो सकता। सर्वज्ञ परमात्मा आत्मा मनुष्यदेह में हो सकता है। सम्पूर्ण वीतराग हो, वह सम्पूर्ण सर्वज्ञ होता है। आत्मा अखण्ड एक द्रव्य होने से उसका ज्ञानसामर्थ्य सम्पूर्ण है। ज्ञानसामर्थ्य सम्पूर्ण है, उसकी प्रतीति और अनुभव करने से वीतराग होने पर वह सर्वज्ञपद मनुष्यदेह में प्राप्त कर सकता है। मनुष्यदेह के कारण नहीं परन्तु मनुष्य में था, इसलिए सर्वज्ञ नहीं हो सकता, ऐसा नहीं है। था नहीं मनुष्य में। वह तो अपने द्रव्य में ही था। वह द्रव्य के स्वभाव की दृष्टि और अनुभव करने से, मनुष्यदेह भले निमित्तरूप से हो परन्तु मनुष्य के कारण केवलज्ञान प्राप्त करता है, ऐसा कहनेवाले, आत्मा की पहिचान नहीं कर सकते। जो कुल और शरीर से भक्ति करके उसमें सर्वस्व मान रहे हैं। ले! क्या और गया?

शरीर की क्रिया और राग की क्रिया द्वारा आत्मा को पहुँच जाऊँगा, ऐसा माननेवाले चैतन्य की क्रिया को समझते नहीं। कुल की परीक्षा से.... इस मनुष्यदेह में था, इसलिए केवलज्ञान नहीं पा सकता है, ऐसा माननेवाले को आत्मा की खबर नहीं है। मनुष्यपने में भी सर्वज्ञपद सम्पूर्ण सामर्थ्य मेरा है, ऐसा भान हुआ, विश्वास में लाकर स्थिरता द्वारा, मनुष्यदेह होने पर भी, मनुष्यदेह के कारण नहीं, मनुष्यदेह होने पर भी मनुष्यदेह के कारण नहीं, अन्तर आत्मा के अवलम्बन से, सर्वज्ञपद में मनुष्यदेह में प्रगट हो सकता है। उसने आत्मा की वास्तविक स्तुति की। बाकी यह मनुष्य था न, बनिया में जन्मा था न, बनिया में जन्मा था न, ब्राह्मण था न। अब सुन न अब। कितने ही यह कहे, बनिया न? बनिया केवल (ज्ञान) पावे? अरे! सुन! बनिया कब आत्मा था? सेठी! और वह तो पहले से निर्धन था। खबर नहीं? पहले से उठा तब से निर्धन। पैसा नहीं था, बुद्धि थोड़ी और सात कक्षा पढ़ा हुआ। अब उसे केवलज्ञान हुआ? अरे! सुन न अब तू। समझ में आया इसमें? कल का लकड़हारा हो, लकड़ी बेचने आवे न,

जहाँ दूसरे दिन केवलज्ञान पावे वहाँ... अरे! लकड़हारा केवलज्ञान (पाया)! सुन न! आत्मा लकड़हारा कब था? समझ में आया? और लक्ष्मी बिना का निर्धन आत्मा कब था? आत्मा को बाहर के कारण से पहिचानना, वे मूढ़ जीव हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अरे! उसका शरीर तो रोगी का था। उसका निर्बल था, जीर्ण काठी शरीर की थी। उसे केवलज्ञान होगा? समझ में आया? यह उसे केवलज्ञान हो, सुन न! वह आत्मा से, आत्मा को होता है; किसी पर के कारण नहीं होता। समझ में आया?

अथवा शरीर में संहनन मजबूत हो तो भगवान को—आत्मा को केवलज्ञान होता है। ऐसी पहिचान करानेवाले मूढ़ जीव हैं। वे आत्मा के माहात्म्य को नहीं समझ सके। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भाई! यह तो शरीर संहनन मजबूत हो न, बारह महीने कायोत्सर्ग रह सके। बाहुबलीजी रहे, लो! शरीर मजबूत बिना ध्यान किस प्रकार होगा? सेठी! ऐसा करके शरीर की मजबूताई से आत्मा की लक्ष्मी प्रगट नहीं होती और मजबूत हो तो होती है, ऐसा कहनेवाले आत्मा की शक्ति और आत्मा के भान से भूले हुए हैं। भगवान! उसे आपकी भक्ति और आत्मा की भक्ति नहीं आती। समझ में आया?

यदि किसी को हो भी जावे तो वह आपको मनुष्यकुल में पैदा बतलाकर पुनः छोड़ देता है,.... अरे! मनुष्य थे न वे तो, मनुष्य थे न, उसमें क्या है? बालक थे न, पहले ऐसे नहीं थे? ऊं... ऊँ... करते और चलते हुए गिर जाते न.... पहले तो ऐसे हिलने में शरीर लथड़िया खाये, वह? वह केवलज्ञान पावे? अब सुन न! केवलज्ञान वह नहीं पाया—शरीर, शरीर के कारण नहीं पाया। चैतन्यज्योति जलहल ज्योति में नजरें लगाने से, उस निधान को देखने से केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। आत्मअवलोकन करते...

उसमें नहीं आता? श्रीमद् में भी आता है न? 'आतमभावना भावता लहिये केवलज्ञान' नहीं आता? जीव लहे केवलज्ञान रे। उसे रट रखे परन्तु उसका अर्थ क्या है? 'आतमभावना भावता जीव लहे केवलज्ञान रे...' इस शरीर की भावना और विकल्प की भावना भाते हुए आत्मा केवलज्ञान प्राप्त करे, ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है।

यह सबसे बढ़कर मूर्खता है। सुवर्ण यदि शुद्ध है, चाहे वह पत्थर से नहीं, दुनिया के और किसी हल्के पदार्थ से उत्पन्न हुआ हो तो भी बाजार में उसकी कीमत

पूरी ही लगेगी.... स्वर्ण की तो पूरी कीमत मिलेगी। समझ में आया? यह मोरपींछी है न? मोर... मोर। मोर के पंख में ताँबा होता है। लाल लाल दिखता है न? वह ताँबा है। उसका रस निकालकर उसे क्षय पर देते हैं। उसमें से ताँबे का रस, ऐसी उसकी ताँबे की भस्म हो कि क्षयवाले को (टीबी वाले को) पुण्य का उदय हो और असाता का न हो तो वह उसे दे और मिट जाये। उसकी कीमत उस वैद्य को होती है कि इसमें ताँबे की धातु है। अज्ञानी मोरपिच्छी पक्षी का एक निकाला हुआ... बारह महीने में निकाल डाले न, पंख निकाल डाले। वह तो पंख। यह तो वह मोर नहीं? ऐसा का ऐसा। अरे! सुन न! उस पंख में उसके ताँबे की जो सामर्थ्य है, वैसी सामर्थ्य बाहर के ताँबे में नहीं हो सकती।

इसी प्रकार आत्मा की ताकत शरीर और विकल्प के कारण प्रगट होती है, ऐसा माननेवाला वह चैतन्यधातु रस पड़ा है, उसे वह भूल जाता है। समझ में आया? कहते हैं कि **किसी हल्के पदार्थ से उत्पन्न हुआ हो....** ऐसा कहा न? सोना चाहे जहाँ से आया। वह विष्टा में पड़ा हो और सोना पकड़ में आया। चावल कहीं पड़े हों और सोना हाथ आ गया। कीमत चली जाती होगी उसकी? कीमत होती होगी या नहीं? कहाँ से हाथ आया सोना? यह आया उस पायखाने में से आया, चाहे जो हो। नीचे पायखाने में सोने की ईंट पड़ी थी। कौन जाने चाहे जो, परन्तु निकला विष्टा में से, इसलिए उसकी कीमत घट जाती होगी?

इसी प्रकार शरीर विष्टा जैसा और विकल्प भी विष्टा जैसा। पुण्य-पाप के परिणाम विकल्प जहर जैसे हैं। उसमें से चैतन्य भिन्न हाथ आया। समझ में आया? इससे कहीं चैतन्य की कीमत घट जाती है, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया? **बाजार में उसकी कीमत पूरी ही लगेगी और यदि वह मैलसहित है, अशुद्ध है तो किसी अच्छे पदार्थ से उत्पन्न होने पर भी उसकी पूरी कीमत नहीं लग सकती।** मेलवाली चीज़ कोई ऐसी हो और अच्छे में से प्रगट हुई हो तो उसकी कोई कीमत नहीं। इस कोयले में हीरे नहीं पकते? सेठी! कोयले में पकते हैं या नहीं? कोयले की खान में। इसलिए कीमत घट जाये? आसपास कोयला और उसमें से पका हीरा। वह परमाणु की स्वतन्त्र वहाँ

परिणमन दशा दूसरी है। इसी प्रकार यह शरीररूपी कोयला और पुण्य-पाप के मलिन परिणाम, उनमें पड़ा हुआ चिद्घन आत्मा, उनमें रहा हुआ आत्मा प्रगट न हो, ऐसी बात है नहीं। समझ में आया?

इस प्रकार जो आत्मा शुद्ध है, कर्ममल से रहित है; भले ही उस पर्याय में नीचकुल में पैदा हुआ हो,.... चाण्डाल के कुल में उत्पन्न हुआ हो, परन्तु सम्यग्दर्शन प्राप्त करे तो उसे देव कहने में आता है। आता है न रत्नकरण्ड श्रावकाचार में? देव। अग्नि जैसे रखे दबायी हुई, परन्तु अग्नि तो जलहल अन्दर पड़ी है। इसी प्रकार जिसका शरीर काला-कुबड़ा, काठा ऐसा, अमुक ऐसा। परन्तु चैतन्य अंगारा जिसने अन्दर से प्रस्फुटित हुआ, कहते हैं कि चाण्डाल कुल में उपजा, वह देव है। किसके कारण? कुल के कारण? सम्यग्दर्शन की प्राप्ति, सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति चैतन्य से जहाँ प्रगट हुई, कहते हैं कि वह देव है। वह देव को भी पूजनीय है। चाण्डाल की देह में रहा हुआ आत्मा प्रगट होता है। सम्यक् साक्षात्कार देव को पूजनीय है। उसकी कीमत कम नहीं आंकी जाती कि हल्के कुल में जन्मा था, यह बड़े नागर के कुल में, ऐसे शरीर और ऐसे रूपवान के लिये वहाँ कुछ कीमत होगी?—कि नहीं, उसकी कीमत कहीं आत्मा में नहीं है।

भले ही उस पर्याय में नीचकुल में पैदा हुआ हो, वह पूज्य कहलाता है और यदि वही आत्मा उच्चकुल में पैदा होकर भी अशुद्ध है,.... मलिन परिणाम मिथ्या भ्रान्ति करता हो। अरे! ग्यारह अंग का उघाड़, नौ पूर्व का (उघाड़) हो और मिथ्याश्रद्धा करता हो, तो उसकी कोई कीमत है नहीं। और ज्ञान की दशा अल्प हो—थोड़ी हो, तथापि जिसने चैतन्य की कीमत की है, तो उस चैतन्य की कीमत कम हो जाती है, ऐसा नहीं है। २३ (हुई)।

काव्य २४

दत्तश्त्रिलोक्यां पटहोऽभिभूताः
सुरासुरास्तस्य महान्स लाभः।
मोहस्य मोहस्त्वयि को विरोद्धुं
मूलस्य नाशो बलवद्विरोधः॥

तीन लोक में ढोल बजाकर, किया मोह ने यह आदेश।
सभी सुरासुर हुए पराजित, मिला विजय यह उसे विशेष॥
किन्तु नाथ! यह निबल आपसे, कर सकता था कहाँ विरोध।
वैर ठानना बलवानों से, खो देता है खुद को खोद॥

अन्वयार्थ — मोह के द्वारा (त्रिलोक्याम्) तीनों लोकों में (पटहः) विजय का नगाड़ा (दत्तः) दिया गया अर्थात् बजाया गया; उससे जो (सुरासुराः) सुर और असुर (अभिभूताः) तिरस्कृत हुए, (सः) वह (तस्य) उस मोह का (महान् लाभः) बड़ा लाभ हुआ किन्तु (त्वयि) आपके विषय में (विरोद्धुम्) विरोध करने के लिए (मोहस्य) मोह को (कः) कौनसा (मोहः) भ्रम हो सकता था अर्थात् कोई नहीं, क्योंकि (बलवद्विरोधः) बलवान के साथ विरोध करना (मूलस्य नाशः) मानो मूल का नाश करना है।

भावार्थ — हे भगवन्! जिस मोह ने संसार के सब जीवों को अपने वश में कर लिया, उस मोह को भी आपने जीत लिया है अर्थात् आप मोहरहित और राग-द्वेष से शून्य हैं।

काव्य - २४ पर प्रवचन

२४ (श्लोक)।

दत्तश्त्रिलोक्यां पटहोऽभिभूताः
सुरासुरास्तस्य महान्स लाभः।

मोहस्य मोहस्त्वयि को विरोद्धुं
मूलस्य नाशो बलवद्विरोधः॥

क्यों भाई चले गये नरभेरामभाई? चले गये होंगे।

तीन लोक में ढोल बजाकर, किया मोह ने यह आदेश।
सभी सुरासुर हुए पराजित, मिला विजय यह उसे विशेष॥
किन्तु नाथ! यह निबल आपसे, कर सकता था कहाँ विरोध।
वैर ठानना बलवानों से, खो देता है खुद को खोद॥

निर्बल के साथ वैर करना परन्तु इसकी साथ बैर करके मर जायेगा। बड़े के साथ, दीवार के साथ सिर पछाड़ेगा, नीम के पत्ते हिलते हों, वहाँ सिर पछाड़ तो अलग बात है। क्योंकि पत्ता आगे चला जायेगा ऐसे। समझ में आया? वह निर्बल है, पत्ते हिलते हो न? नीम... नीम। थोड़े आगे चलेंगे। परन्तु मजबूत दीवार के साथ सिर फोड़ने (जायेगा तो) सिर फूट जायेगा। इसी प्रकार निर्बल के साथ तुझे वैर करना हो तो भले, परन्तु सबल परमात्मा चैतन्यधातु! सर्वज्ञ परमात्मा के साथ विरोध, तेरे विरोध का नाश कर डालेगा। पानी-पानी करके राख कर डालेगा। इसलिए बड़े के साथ विरोध नहीं हो सकता।

अन्वयार्थ :- मोह के द्वारा तीनों लोकों में विजय का नगाड़ा दिया गया.... मैंने सबको जीता है, मोह कहता है—मैंने सबको जीता है। यह नौवें ग्रैवेयक में गये मुनियों को भी हम क्रिया करते हैं और व्रत पालते हैं और अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं और व्यवहार हमारा अच्छा, मोह ने उसे भी मार डाला, कहते हैं। मिथ्यात्व ने उसे जीत लिया। ऐसे त्यागी हुए हजारों रानियों के। समझ में आया? हम अट्ठाईस मूलगुण के पालनेवाले। मिथ्यात्व ने मार डाला उसे। भ्रमणा (की है कि) हम इतना तो करते हैं न? ऐसा तो करते हैं न? ऐसे मिथ्यात्व के अहंकार के कारण सर्वत्र मोह ने विजय प्राप्त की है।

सुर और असुर तिरस्कृत हुए,.... अरे! बड़े देव और असुर तिरस्कार प्राप्त हुए। **वह उस मोह का बड़ा लाभ हुआ....** मोह को बड़ा लाभ हुआ। सबसे मुझे मेरे विजय का लाभ मिला है। **वह उस मोह का बड़ा लाभ हुआ किन्तु आपके विषय में विरोध**

करने के लिए मोह को कौनसा भ्रम हो सकता था.... उसे भ्रम क्या हो कि मैं उसे जीत सकूँगा। समझ में आया? **कोई नहीं, क्योंकि बलवान के साथ विरोध करना मानो मूल का नाश करना है।** ....है न उसमें कहीं शब्द? संस्कृत में है दूसरी लाईन। ....समान के साथ करना, न्यून को अधिकारी करके सिर फूट जायेगा। भगवान चैतन्यधातु, तेरे साथ मोह की विजय हो गयी, तूने मोह का विजय किया। मोह ने दूसरे का विजय किया। परन्तु आपने तो मोह को विजय किया, प्रभु! हे नाथ! तुझमें ही यह सामर्थ्य है। दूसरे में यह सामर्थ्य नहीं। दूसरे बड़े मानधाता भूले हैं। त्यागी हुए, जोगी हुए, मुनि हुए। महा दस-दस घण्टे तक ऐसे ध्यान में रहे। अहंकार (किया)। वह विकल्प की क्रिया होती है, उसे मान बैठा कि हमें इसमें धर्म होता है। इस मिथ्यात्व ने उसे जीत लिया है। परन्तु प्रभु! तूने मिथ्यात्व को जीता। अज्ञान को जीतकर आप सर्वज्ञ और परमात्मा हुए। आपको यह मोह जीत सका नहीं।

मानो मूल का नाश करना है। विरोधी महाबलवन्त साथ में हो.... बैल होता है न बड़ा? सांढ। क्या कहते हैं? खूंटा, खूंटा। सांढ़... सांढ़। कचरे का ढ़ेर हो न? कूड़े का ढ़ेर कहते हैं? क्या कहते हैं? कूड़ा... कूड़ा। सिर मारता है। उसे मानो कि मैं इसे पहुँच गया, हों! परन्तु वह तो पोलंपोला है। वहाँ क्या तू पहुँचा? दीवार के साथ सिर मारे तो सींग टूट जाये ऐसा है। टूट जायेंगे, दीवार अंगुल मात्र भी नहीं हटेगी। समझ में आया? एक मूर्ख की बात नहीं आती? वह बावड़ी की, भाई! आती है न? बावड़ी,... बावड़ी। बड़ी बावड़ी थी न। यह अपने को गाँव से बहुत दूर पड़ती है। पाँच-पचास कदम महिलाओं को (चलना पड़ता है)। इसलिए अपने गाँव की ओर ले जाओ। ऐसे सब मूर्ख इकट्ठे हुए और बावड़ी के सामने का भाग होता है न, उसमें डाले कपड़े-कपड़े। कपड़े डालकर खेंचाखेंच (की)। ....पत्थर नहीं डालते थे अभी? यह ले गये न लाठी। चिल्लाहट पाड़ते थे। पच्चीस-पच्चीस मण के करके। हो... हा (करने लगे)। उसमें वे कपड़े होंगे न, धोतियाँ होंगी न, वे ऐसी गर्दन में डाले हुए। खींचे। पोचा। ऐसे चला। वह फटी न जरा.... एक अंगुल हिला। ऐ... चली यह बावड़ी। धूल में भी चली नहीं। तू मूर्ख है। वह बावड़ी आयी सामने। अरे! कदम जरा ऐसे हुआ न, फटा, वस्त्र फटा जरा ऐसे... होकर। वह... बावड़ी खिसकी, ऐसा कहते हैं न? उसी प्रकार अज्ञानी

मूर्खाई खिसकी। कुछ हम आगे गये हैं, हों! कुछ हम आगे गये। मूर्ख में कहीं गया नहीं। सुन न अब। यह शुभ और अशुभ के विकल्प के जाल में कुछ मैंने आत्मा को पकड़ा था, हों! कुछ मैंने आत्मा को जाना था। बावड़ी खिसकी है। सेठी!

— हे भगवन्! जिस मोह ने संसार के सब जीवों को अपने वश में कर लिया, उस मोह को भी आपने जीत लिया है अर्थात् आप मोहरहित और राग-द्वेष से शून्य हैं। आपकी कीमत मोहरहित करनेवाले कीमत कर सकते हैं। मोह में पड़े हैं, वे प्रभु! आपकी कीमत नहीं कर सकते।

काव्य २५

मार्गस्त्वयैको ददृशे विमुक्तेः,
चतुर्गतीनां गहनं परेण।
सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन
त्वं मा कदाचित् भुजमालुलोकः॥

तुमने केवल एक मुक्ति का, देखा मार्ग सौख्यकारी।
पर औरों ने चारों गति के, गहन पंथ देखे भारी॥
इससे सब कुछ देखा हमने, यह अभिमान ठान करके।
हे जिनवर! नहिं कभी देखना, अपनी भुजा तान करके॥

अन्वयार्थ — (त्वया) आपके द्वारा (एकः) एक (विमुक्तेः) मोक्ष का ही (मार्गः) मार्ग (ददृशे) देखा गया है और (परेण) दूसरों के द्वारा (चतुर्गतीनाम्) चारों गतियों का (गहनम्) सघन वन (ददृशे) देखा गया है, मानो इसीलिए (त्वम्) आपने (मया सर्वं दृष्टम्) मैंने सब कुछ देखा है, (इति स्मयेन) इस अभिमान से (कदाचित्) कभी भी (भुजम्) अपनी भुजाओं को (मा आलुलोकः) नहीं देखा।

भावार्थ — घमण्डियों का स्वभाव होता है कि वे अपने को बड़ा समझकर बार-बार अपनी भुजाओं की तरफ देखते हैं, पर आपने घमण्ड से कभी अपनी भुजाओं की तरफ नहीं देखा। उसका कारण यह है कि आप सोचते थे कि मैंने तो

सिर्फ एक मोक्ष का ही रास्ता देखा है और अन्य सभी देवी-देवता चारों गतियों के रास्तों से परिचित हैं; इसलिए मैं उनके सामने अल्पज्ञ हूँ। अल्पज्ञ का बहुज्ञानियों के सामने अभिमान कैसा ?

श्लोक का तात्पर्य यह है कि हे प्रभु! आप अभिमान से रहित हैं और निश्चित ही मोक्ष को प्राप्त होनेवाले हैं परन्तु अन्य देवी-देवता अपने-अपने कार्यों के अनुसार नरक आदि चारों गतियों में घूमा करते हैं।

काव्य - २५ पर प्रवचन

पच्चीस।

मार्गस्त्वयैको ददृशे विमुक्तेः,
चतुर्गतीनां गहनं परेण।
सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन
त्वं मा कदाचित् भुजमालुलोकः॥

तुमने केवल एक मुक्ति का, देखा मार्ग सौख्यकारी।
पर औरों ने चारों गति के, गहन पंथ देखे भारी॥
इससे सब कुछ देखा हमने, यह अभिमान ठान करके।
हे जिनवर! नहिं कभी देखना, अपनी भुजा तान करके॥

क्या कहते हैं ? अलंकार ऐसा किया है न जरा!

अन्वयार्थ :- आपके द्वारा एक मोक्ष का ही मार्ग देखा गया है.... प्रभु! आपने तो एक ही मार्ग बतलाया, हों! दो-तीन नहीं बतलाये। एक ही बतलाया है। उसने— मूढ़ ने अनेक बतलाये, ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं ? हे नाथ! आपने तो एक ही मोक्ष का मार्ग बतलाया। एक ही। और दूसरे देवों ने तो चार गति के अनेक मार्ग बतलाये। इसलिए वे बड़े हो गये और आप रह गये छोटे। समझ में आया ?

दूसरे प्रकार से कहे (तो), हे त्रिलोकनाथ परमात्मा! अथवा हे आत्मा! यह तुझमें अनुभव की दृष्टि / श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र एक ही मोक्षमार्ग तूने माना है। और

अज्ञानियों ने तो दो, तीन, चार, पाँच गति में भटकने के मार्ग (माने हैं)। उसे धर्म मानकर मार्ग माना है। व्यवहार भी मोक्षमार्ग है, निमित्त भी मोक्षमार्ग है, देह की क्रिया भी मोक्षमार्ग है। ऐसा मानकर तू तो एक को कहे, वे अनेक को कहे। वे तुझसे बढ़ गये। सेठी! परन्तु **दूसरों के द्वारा चारों गतियों का सघन वन देखा गया है,....** चारों गति में भटकने में सघन वन। वह कहीं गोता खायेगा बबूल के पन्थ में। कहीं रास्ता हाथ आयेगा नहीं। परन्तु मार्ग वहाँ पगडण्डियाँ अनेक हो, हों! प्रभु तेरा मार्ग तो एक ही है, हों! आहाहा! समझ में आया? यह पगडिण्डयाँ मर जाने की, भटकने की, भटक-भटककर चार गति में।

पंचास्तिकाय में आता है न? हे प्रभु! आप तो स्वतन्त्र आत्मा की मुक्ति की लक्ष्मी को प्राप्त कराते हो। चार गति की पराधीनता का आप नाश कराते हो। है न? दूसरी गाथा है, टीका। पंचास्तिकाय। यह है न? कौन सी गाथा है यह? दूसरी। देखो! दूसरी गाथा। देखो!

समणमुहुग्गदमट्ठं चदुग्गदिणिवारणं सणिव्वाणं।
एसो पणमिय सिरसा समयमिणं सुणह वोच्छामि॥२॥

हे नाथ! '**शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप 'निर्वाण का परम्परा से कारण' होने से (१) परतन्त्रता निवृत्ति जिसका लक्षण है और (२) स्वतन्त्रता प्राप्ति जिसका लक्षण है, ऐसे फल से सहित हैं।**' आपका उपदेश है। हे भगवान! आपने तो चार गति के नाश का उपाय बताया है। परतन्त्रता के नाश का। अज्ञानी ने चार गति की प्राप्ति का उपदेश बताया है। स्वर्ग तो मिलेगा न? मनुष्य की अपेक्षा तो सुखी होऊँगा न? मूढ़। स्वर्ग में जाकर स्वर्ग के परिणाम की यहाँ प्रशंसा करता है, यह कुदेव ने ऐसा मार्ग बताया है, कुगुरु ने ऐसा मार्ग बताया है। समझ में आया? आपने तो एक धारावाही मार्ग बताया। चार गति की परतन्त्रता का निवारण और निर्वाण की स्वतन्त्रता की उपलब्धि— एक ही मार्ग आपने कहा।

तो कहते हैं, **आपने, मैंने सब कुछ देखा है, इस अभिमान से कभी भी अपनी भुजाओं को नहीं देखा।** घमण्डियों ने स्वयं बहुत मार्ग मैंने बतलाये, ऐसा देखकर मेरे

शरीर में, भुजा में क्या बल है! हाथ को भी वह देखता नहीं।

भावार्थ :- घमण्डियों का स्वभाव होता है कि वे अपने को बड़ा समझकर बार-बार अपनी भुजाओं की तरफ देखते हैं,.... बारम्बार हाथ की ओर देखे। आपने भुजा को देखा नहीं। **आपने घमण्ड से कभी अपनी भुजाओं की तरफ नहीं देखा। उसका कारण यह है कि आप सोचते थे कि मैंने तो सिर्फ एक मोक्ष का ही रास्ता देखा है....** मैंने तो एक मोक्ष का ही रास्ता देखा है। अर्थात् मुझे अब भुजा को देखना रहा नहीं। वह भुजा को देखता है कि मुझमें कितनी ताकत है। लड़ता है न? यह कुश्ती करे तब पछाड़ते जाये ऐसे। मल्ल-मल्ल। प्रभु! आपने तो पछाड़ा नहीं कुछ, हों! मैंने तो एक ही मोक्षमार्ग बतलाया है। मैंने तो एक ही बतलाया, वह तो चार मार्ग बताते हैं। चार गति का बताते हैं। अथवा मोक्षमार्ग दो प्रकार से कहते हैं। वह अज्ञानी कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्रवाले मोक्षमार्ग को दो कहते हैं, हम बढ़ गये, ऐसा कहते हैं। आपने एक ही बताया, इसलिए आपको घमण्ड है नहीं। समझ में आया? मोक्षमार्ग में नहीं शोर मचाते? मोक्षमार्ग दो है। तीन काल में दो मोक्षमार्ग नहीं, मोक्षमार्ग एक ही है।

मुमुक्षु : मार्ग तो कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग कहा है, वह बोरी को चावल कहा है। बारदान को चावल तोलकर इकट्ठे (बोला जाता है), चार मण और ढाई सेर। तोला बारदान। यह चावल होते हैं न? चार मण और ढाई सेर। ढाई सेर तो बारदान—बोरी है और चार सेर चावल है। इसलिए ढाई मण चावल हो गये? चार सेर और ढाई मण।

इसी प्रकार सम्यग्दर्शन का कथन दो प्रकार का, सम्यग्ज्ञान का, सम्यक्चारित्र का, सम्यक्शान्ति का दो प्रकार का कथन (आवे परन्तु) मार्ग एक आपने, कहा है। अज्ञानियों ने दो मार्ग कहे हैं, वे मूढ़ जीव चार गति में भटकनेवाले हैं। सोहनलालजी! समझ में आता है या नहीं कुछ?

अन्य सभी देवी-देवता चारों गतियों के रास्तों से परिचित हैं;.... वे परिचित हैं, मार्ग देखा है, ऐसा कहते हैं। उसने चार गति का मार्ग देखा है। देखा है, वह बताते हैं और आपने तो दूसरा कोई मार्ग अदृष्ट मार्ग निकाला। विकल्पातीत, अन्दर चिन्तातीत,

मनातीत, चैतन्यमूर्ति की श्रद्धा, ज्ञान और निर्विकल्प अनुभव एक ही प्रकार मोक्ष का मार्ग आपने कहा है। **मैं उनके सामने अल्पज्ञ हूँ।** ऐसा कहते हैं। देखो! क्या कहते हैं? उसने चार मार्ग बताये, मैंने एक बताया, उसने दो बताये, मैंने एक बताया, इसलिए उसके पास मैं कम सही। किसकी अपेक्षा से? उस चार बतानेवाले की अपेक्षा से मैं कम सही। परन्तु वह सच्चा-सच्चा कम परन्तु। ऐसा कहते हैं। **अल्पज्ञ का बहुज्ञानियों के सामने अभिमान कैसा?** मैं तो अल्पज्ञ हूँ, हों! एक ही मार्ग मैंने बताया, दूसरा कोई बताया नहीं। और उसने चार बताये या दो बताये।

श्लोक का तात्पर्य यह है कि हे प्रभु! आप अभिमान से रहित हैं और निश्चित ही मोक्ष को प्राप्त होनेवाले हैं परन्तु अन्य देवी-देवता अपने-अपने कार्यों के अनुसार नरक आदि चारों गतियों में घूमा करते हैं। देखो! इस प्रकार चैतन्य के गुण की निर्मल परिणति की प्रशंसा और गीत गुणग्राम भक्ति करना, इसका नाम सच्ची भक्ति है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)